'Research Journey' International Multidisciplinary E- Research Journal
Vol. 2 Issue. 2
ISSN :2348-7143 (Online)
April- June- 2015

"अनूदित काव्य संकलन 'दमन' में अभिव्यक्त माँ की पीड़ा के विविध रूप"

डॉ. सुनील बाबुराव कुलकर्णी
विभागाध्यक्ष -हिंदी
उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव

प्रस्तुत आलेख में अनूदित काव्यसंकलन 'विविशता' में अभिव्यक्त माँ की पीड़ा के विविध रूपों पर प्रकाश डालने की कोशिशें की जा रही है। इस अपेक्षा के साथ की पाठक के मन को भाये,काव्य संकलन की ओर देखने की उनकी अपनी एक स्वतंत्र दृष्टि विकसित होवे, कविताओं को पढ़ने के बाद अर्थग्रहण करने में पाठकों को सुविधा हो जाए।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आज विश्वग्राम,विश्वबाजार की तरह विश्वभाषा की कल्पना संजोई जा रही है। उसके परिणाम स्वरूप प्रादेशिक बोलियाँ और भाषाएँ अस्त की ओर मार्गक्रमण कर रही है। उन्हें जिलाए रखने हेतु अनुवाद विधा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। आज संपूर्ण भारत वर्ष एवं विश्व साहित्य में साहित्य की एखाद् ही ऐसी विधा रही होंगी ,जिसमें रची किसी भी कृति का अन्य भाषा में अनुवाद करना असंभव-सा माना गया हो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व की कोई भी भाषा अनुवाद के दृष्टि से अछूती न रही होगी ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

भारत वर्ष तो आरंभ से ही भाषा के दृष्टि से अत्यंत समृध्द एवं संपन्न देश माना जाता है। इसमें प्रत्येक पं्रात एवं भूप्रदेशों में कईं भाषाएँ बोली और लिखी जाती रही है। उसी में से एक है मराठी । जो महाराष्ट्र की अपनी मातृभाषा ,राजभाषा मानी जाती है। जिसमें लगभग बारहवी सदी से साहित्य रचना के पूट मिलते हैं। जहाँ एक ओर विश्व की लगभग सभी भाषाओं में लिखा गया साहित्य आज मराठी में अनूदित करने की परंपरा विकसित हुई है ,वहीं दूसरी ओर मराठी में लिखा गया साहित्य भी विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनूदित करने की परंपरा का भी सूत्रपात हुआ है। डॉ. शंकर चव्हाण व्दारा लिखित मराठी काव्य संकलन 'कोंडमारा ' का हिंदी भाषा में 'दमन'इस नाम से अनुवाद कर उसी परंपरा में अपना एक तिनका योगदान देने के प्रयास मैने किया है।

प्रस्तुत आलेख में अनूदित काव्यसंकलन 'विविशता' में अभिव्यक्त माँ की पीड़ा के विविध रूपों पर प्रकाश डालने की कोशिशें की जा रही है। इस अपेक्षा के साथ की पाठक के मन को भाये,काव्य संकलन की ओर देखने की उनकी अपनी एक स्वतंत्र दृष्टि विकसित होवे, कविताओं को पढ़ने के बाद अर्थग्रहण करने में पाठकों को सुविधा हो जाए।

प्राय : काव्यानुवाद को नकल माना जाए या पुन:सृजन इव विषय में विव्दानों में एक मत नहीं दिखाई देता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रणेता प्लेटो तो अनुकरण को नकल मात्र कहकर उसे त्याज्य ही मानते है। निर्मला जैन के मतानुसार प्लेटो ने अनुकारण को नकल माना क्योंकि उनका यह मानना था कि "वह सत्य के अनुकरण का अनुकर्ता होता है। वह न अपने विषय का तात्विक ज्ञाता होता है न उपयोग का। उसकी रचनाएँ आत्मा के असाधु अंश पोषण करती हैं। मानव संवेगों पर इन कलाकृतियों का प्रभाव उत्तेजनात्मक,अत: हानिकारक होता है।"1 परंतु अनुकरण संबंधी प्लटो के इस अवधारणा का विरोध उनके जीते जी उनके शिष्य

अरस्तु ने किया और अनुकारण को नकल न मानकर पुन: सृजन का दर्जा दिया। अरस्तु ने कलाओं के मूल में अनुकृति को तत्त्वत:स्वीकार किया है, पर अनुकृति की उनकी अवधारणा में विकास दिखाई देता है। भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्य डॉ. भगीरथ मिश्र के मतानुसार " वे कलाकार की कला को दर्पण में पड़े प्रकृति के प्रतिविम्ब के रूप में नहीं देखते। उनके विचार से कविता या कला अनुकृति है, पर एकदम नकल नहीं है। यह उसकी सर्जना की नकल है। कला, प्रकृति और जीवन का पुन:प्रस्तुतीकरण है। यह पुन:प्रस्तुतीकरण, वास्तविकता के आधार पर या उससे प्रेरणा लेकर नयी सर्जना है; क्योंकि अपनी कलाकृति में, वह उस कमी की पूर्ति भी करने का प्रयत्न करता है, जो वास्तविक वस्तु में उसे दिखती है। वह ऐसी बातें भी देता है, जो असली वस्तु में नहीं है, पर जिसकी संभावना हो सकती है।"2 अनुवाद या काव्यानुवाद अनुकरण है या पुन:सृजन इस संदर्भ में निष्कर्ष रूप में अपना मत अभिव्यक्त करते समय इन्दूनाथ चौधुरी का भी यह मानना था कि "अनुवाद यह एक सृजनात्मक प्रक्रिया है जिसके व्दारा अनुवादक को लेखक की दुनिया को फिर से जीना होता है"3 जैसे इन्दूनाथ चौधुरी का मानना है वैसे ही ललित कार्तिकेय का भी मानना है कि "अनुवादक ढोता है अपने कंधों पर किसी और का सर- यानी वह अपने जीवन को स्थगित कर कृति का जीवन जीता है।"4

लगभग इसीसे मिलता जुलता विचार मैने प्रस्तुत काव्यसंलन का अनुवाद करते समय 'पुन: सृजन की अभिव्यक्ति 'में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए प्रतिपादित किया हैं-" मेरा अपना भी यहीं मानना हैं कि 'काव्यानुवाद' नकल नहीं बल्कि पुन:सृजन होता है क्योंकि मराठी के प्रसिध्द् कवि डॉ. शंकर चव्हाण व्दारा निर्मित 'कोंड़मारा' इस काव्य संकलन का 'दमन' इस नाम से हिंदी में अनुवाद करते समय अरस्तु के उपर्युक्त विधान को मैने बार-बार अनुभव किया।

मित्रहों ! यह बात सही है कि किसी भी दूसरी भाषा में लिखे गये कवि के शब्दों को, कल्पना को, अ-नुभवों को, भाव-भावनाओं को, अभिव्यक्ति को यथावत अन्य भाषा में अनूदित करते समय कोई भी अनुवादक सिफ्र. शब्दों को ही नहीं बल्कि उसके अर्थ, भाव, कल्पना, अनुभव आदि को भी यथावत हस्तांतरित करने का प्रयास करता है। उसे यह मालूम होता है कि मात्र शब्दों का अनुवाद करने पर काव्यानुवाद कोरा अभास या - नकल मात्र बन जाएगा। इसलिए वह काव्यानुवाद करते समय अपने संचित शब्दज्ञान के अतिरिक्त अनुभव, कल्पना, विचार, सामाजिक यथार्थ, आदर्श आदि का सहारा लेकर 'शब्दानुवाद' न कर 'भावानुवाद' करने पर बल देता है। ऐसा करने पर निश्चित ही उसके व्दारा किया गया काव्यानुवाद मात्र नकल न रहकर पुन:सृजन ब-न जाता है। यही कारण है कि 'विवशता' को मै एक सफल अनूदित कृति मानता हूँ।"5

प्रस्तुत अनूदित काव्य संकलन 'दमन 'में डॉ. शंकर चव्हाण ग्राम्य परिवेश में जीवनयापन कर रही, अल्पसंख्यक जाति से संबंधित माताओं की पीड़ा के विविध रूपों को अभिव्यक्ति देते है। मूल मराठी काव्य संकलन की भूमिका लिखते हुए मराठी के प्रसिध्द् आलोचक डॉ. प्रल्हाद लुलेकर जी ने लिखा हैं कि "समाज में अस्तित्वहीन होनेवाली और ज्.ाि◌न्दगी भर सारें दु:खों का बमीठ.ा बनकर जीनेवाली माताओं का इन कविताओं में स्थित , यथार्थ समाज का भयावह चित्र संवेदनशील मन को घायल करनेवाला है।

प्रसुति के समय में भी दाई के बदले पुलिस व्दार पर आने के कारण मातृत्व के बदले मृत्यु स्वीकरनेवाली और उसका मृत देह चूराकर गाढ़ने पर मज्.ाबूर इस व्यवस्था की माँ ,हररोज चाँद की साक्ष से नया पति,नया

संभोग अनुभवनेवाली और सूरज के सम्मुख प्रतिदिन ललाट पौंछ.नेवाली माँ , गन्ने के खेत के मेड़ों में जवान होनेवाली बेटी का गुँगा-गुँगा-सा देह देखनेवाली माँ,गट्टी फोड़ते हुये,बेटी का देह ढ.कने हेतु अपना देह नग्न करनेवाली माँ,पाल डालने हेतु जगह नहीं तो मृतदेह गाढ़ने हेतु जगह काहाँ ? यह दु:ख मृत्युपूर्व अपनी बेटी को कहनेवाली माँ,इज्जत हेतु ठेकेदार को गाँलियाँ देनेवाली और घर का चूल्हा जलें इसलिए उसी ठेकेदार का हाथ पकड़कर उसका भार सहनेवाली माँ,'बाबासाहब' बनेगा इसलिए स्वयं के पेट को जलाकर बेटे को बडा करनेवाली और अब वह मरता नहीं इसलिए रूदन करनेवाली माँ , मेहनत करते समय मांग में मिट्टी जाने पर भी बच्चों को पंढरपुर की छाया देनेवाली माँ... ऐसे अनगिनत माताओं के बेचैन दु:खों की कभी-भी न खत्म होनेवाली यह काहनी डॉ. शंकर चव्हाण इन्होंने विविध रूपकों और समाज में स्थित विविध प्रश्नों की वेदना के साथ अभिव्यक्त की है।यहाँ की व्यवस्था ने अस्तित्वहीन किए माताओं का यह चित्रण अस्वस्थ एवं बेचैन करके तो जाता ही है ; चिंतन करने पर भी मज्.ाबूर करता है। यहीं डॉ. शंकर चव्हाण इनके कविता की महत्वूर्ण सफलता कहीं जा सकती है।"6

कवि डॉ. शंकर चव्हाण अपने 'मन की बात में' स्वयं लिखते हैं कि "घर में गरीबी का हमेशा का बस्तान। परिश्रम से मेहनत से कृशकाया हुई माँ, केवल नज़रों से जी लगाकर उत्साह से हमारा लालनपालन कर रही थी। उत्सव त्योहार, माह-वर्ष कौन-सा इसका कतइर्ं एहसास नहीं रहता उसे। आनेवाला प्रत्येक दिन भूखा-नंगा। माँ सुलगते कंडे.ेां की तरह सुलगती और उसके उब में हम भाई-बहनों का जीवन जैसा-तैसा बढ़ रहा था। भूख के बगैर और कोई चिंता न थी। कपड़े-लत्ते, मीठाई किसीके सपनों में भी न आते।"7 काव्य संकलन की कविता लिखते समय एक ओर कवि की अपनी माँ है तो दूसरी ओर अन्य-अन्य जन-जाति में दु:खभरा जीवन जीने वाली असंख्य माताएँ हैं। जिनका इस समाज व्यवस्था में अपना कोई नहीं कवि लिखता हैं "यहाँ की धरती, आकाश उनका नहीं था। प्रकाश का पिता सूरज भी उनका नहीं था। यें अस्तित्वहीन हरनें किसी के कौर के लिए जी रही थी। पिलों का एहसास था परंतु इज्.जत से कुछ भी लेना-देना नहीं था। फटी हुई चोलियाँ पहनकर गन्ने की जुड़ी बेचनेवाली यें 'माताएँ 'चिल्लों-पिल्लों का घौंसला सँभाले हुये थी। मित्रहों, इसमें मदारीन, फँसेपारदीन,गड़रीन,धाँगड़ (कुआँ आदि खोदने का काम करने वाली एक जाति) ऐसी फसाई गयी,भ्रष्ट की गयी,सताई गयी अनगिनत माताएँ.है।.8 अनुवादक केरूप में मेरा अपना भी मानना यही हैं कि देहातों में पीड़ित, अन्याय-अत्याचारों से ग्रस्त, कुंठीत,अकेली, परित्यक्त, माताओं के अंतरमन की व्यथाओं का सृजन न सही पुन:सृजन करने में ही क्यों न हो पर मैंने अपनी भूमिका को अदा किया।"9

उपर्युक्त मतों को देखने के पश्चात हम अनुमान लगा सकते हैं कि कवि ने अपने काव्य संकलन में माँ की पीड़ा के कितने विविध रूपों को कलात्मक अभिव्यक्ति दी होगी। इसका प्रत्यय हमें काव्य संकलन की पहली ही कविता 'तिलमिलाहट ' में मिलता है। इस कविता में कवि ने देहातों में दिनभर परिश्रम करने के उपरांत भी

अस्तव्यस्त जीवन जीनेवाली माँ के पीड़ा का चित्रण किया है। कवि माँ के मुख की तुलना उजड़े हुए खेतों के साथ करते हुए लिखता हैं : -

"जैसे उजड़ा खेत
वैसे माँ का दिखना
गाँठ-गाँठ की साड़ी
अस्तव्यस्त हुआ जीना।"10

कवि का यह मानना है कि फसल के काटने के उपरांत खेत जैसा सूनसान -सा हो जाता है। उसका सौंदर्य जैसे पूरी तरह से नष्ट-भ्रष्ट-सा हो जाता है , वैसे ही गरीबी के कारण फटेहाल जीवन जीते समय माँ का जीवन भी अस्तव्यस्त -सा हो गया है। उसी कविता में कवि आगे लिखता हैं :-

झुले को पेड़ पर लटकाकर
माँ खेत में चहूओर सैर-भैर हुई
प्रेम से स्तन में उसके जब दूध भर आया
तब भूख उसकी पेट में ही मर गई॥11

कवि का मानना हैं कि ऐसे अस्तव्यस्त जीवन में भी माँ अपने बेटे के तरफ तनिक भी अनदेखी नहीं करती। दिनभर मोलमज्.ादूरी के कारण वह अपने बच्चे के तरफ उतना ध्यान नहीं दे पाती जितना सर्वसाधारण वर्ग की माताएँ देती है। दिनभर मोलमज्.ादूरी करने के उपरांत भी उसे दो जून की रोटी नशिब नहीं होती। बहुत बार दूसरों के खतों में मज्.ादूरी करते समय उसे अपने बेटे को एक पेड़ पर झुला बाँधकर उसमें रखना पड़ता है। वास्तव में वह स्वयं भूख से व्याकुल होकर चहूओर भटकती है । परंतु जैसे ही वह अपने कोख से उपजे बालक को देखती है तो उसकी भूख अपने आप पेट में ही मर जाती है । और उसके स्तनों में भी अपने-आप दूध उतर आता है। कवि यह बताना चाहता हैं कि भूख से पीड़ित, व्याकुल माँ के हद्य में अपने बच्चे के प्रति कितना अगाध स्नेह भरा रहता है।

काव्य संकलन की दूसरी कविता 'सुखवन' में कवि ने देहात में विचरण करने वाली इन माताओं का दु:ख और संघर्ष के साथ कितना गहरा रिश्ता होता है इसका परिचय दिया है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए वह लाख चाहे कोशिशें करे लेकिन जीवन के अंत तक सफलता उसके कदम नहीं छूती। ऐसी ही एक माँ की पीड़ा को अभिव्यक्ति देते हुए कवि लिखता हैं :-

सैर-भैर जीन्दगानी
जुड़े आसमान से रिश्ता
कितना सिये मन को
नित उधड़ता ही जाता॥12

प्रस्तुत कविता में कवि डॉ. शंकर चव्हाण ने धुमंतु जन-जाति में जन्में माताओं की ज़िंदगी कितनी सैर-भैर होती है उसका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। घुमंतु जन-जाति में जन्म लेनी वाली असंख्य माताओं का

न रहने का कोई ठाव-ठिकाना रहता है और न ही खाने-पीने और सोने का। आज यहाँ तो कल वहाँ ऐसी सैर-भैर जिं.दगी उनको जीनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में बहुत बार रुखा-सुखा खाना और धरती को ही बिछौना मानकर तथा आसमान को ही ओढ.ना मानकर रास्तों पर ही सोना पड़ता है। इस कारण आसमान के साथ उनका अजीब-सा रिश्ता बन जाता है। इस स्थिति में बदलाव लाने हेतु वह चाहे कितने भी प्रयास क्यों न करे बहुत बार समाज उसे सफल होने नहीं देता । परिणाम स्वरूप उसका जीवन और अधिक दु:खद्,त्रासद् बन जाता है। त्याग और समर्पण की उदात्त मूर्ति बनकर जीने वाली इन माताओं को किन-किन विपरित परिस्थितियों से गुजरना पड़ता उसका दिल दहला देने वाला वर्णन कवि ने 'मिट्टी की दिअली का समर्पण' इस कविता में करते हुए लिखा हैं : -

मोल मज.दूरीन है माँ
दिन को है बंदी हुई
दिवाली के दिन भी
इलकल उधड़ी हुई॥13

प्रस्तुत कविता में कवि ने समर्पित जीवन जीने वाली माँ की तुलना 'मिट्टी के दिअली 'के साथ की है। मिट्टी की दिअली जिस प्रकार तिज त्योहार के समय पर एक कोने में अकेली गुँगी -गुँगी-सी जलती रहती है उसी प्रकार माँ भी घर परिवार में अकेली मन ही मन में ,अंतमन में ही जलती रहती है। कवि आगे कहता हैं कि ऐसी माँ पेट भरने हेतु जब किसीके खेत में मोलमज्.ादूरी करने हेतु जाती है तो वह न केवल मज्.ादूरी के लिये ,बल्कि जिस मालिक के खेत में वह काम करती है ; उसके वासनापूर्ति के लिए भी बंदी रहती है। पेट भरने हेतु उसे बहुत बार मन के साथ तन भी सौंपने हेतु मज्.ाबूर होना पड़ता है । इतना सब कुछ कर गुजरने के बाद भी हर दिवाली को उसके तन पर फटी हुई ही साड़ी होती है, जो नित उधड़ती ही जाती है।

ऐसी बेहाली में जी ेनेवाली माँ बावजूद उसके अपने बेटी को सलाह देते हुए कहती कि बेटी औरत की जीन्दगी काँच क े शिशे की तरह होती है। इसलिए औरत जात को बहुत सभंलकर जीना पडता है। बहेलियाँ जन-जाति के स्त्रियों की दूर्दशा पर कवि ने 'बहेलीन माँ' इस कविता के माध्यम से प्रकाश डाला है। कविता में माँ की व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कवि लिखता है कि बहेलिन के कोख से जन्म लेते ही गाँव के किनारों का रस्ता भी बहेलीन माँ के लिए जलने लगता है।ंखुले मैदान पर रहने हेतु भी आसमान मतलब गाँववालें किस प्रकार उसे हमा माँगते है इसका यथार्थ चित्र कवि ने निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है : -

बहेलिन के कोख से जन्म लेने पर
गाँव किनारे का भी जलता रस्ता
खुले मैदान पर भी रहने हेतु
आसमान उसे माँगता हमा॥14

कविता में कवि ने आगे यह भी बताया कि ऐसी माँ अपने प्रसुति की पीड़ा को कैसे अभिव्यक्त करें जिसके घर में प्रसुति के समय दाई के बदले पुलिस आती है। और जन्म लेने के पश्चात सबसे पहले उसपर पुलिस

थाने में अपराध दर्ज होता है। ऐसी आवस्था में वह कैसे गाना गाये ?और कैसे लोरी !क्योंकि उसके झोली पर पुलिस वालों की हमेशा कड़ी नज़.ार होती है।

काव्य संकलन को पढ़ते समय यह जानकर तो मुझे आश्चर्य हुआ कि हमारे प्रगतिशील महाराष्ट्र में आज भी ऐसे स्थल है जहाँ औरतों को अपनी पेट की आग बुझाने हेतु प्रतिदिन किसी-न -किसी से अपने तन का सौदा करना पड़ता है। रात होते ही उसके तन मन की सारी कटपुतलियाँ हिलनी लगती है । उसके देह पर आज भी न उसकी स्वयं की सत्ता है और ना ही उसके पति की; बल्कि किसी और की ही सत्ता होती है। भूख की मज़.ाबूरी से आहत होकर जिसको हररोज अपने तन को बेचना पडता है। इस क्रियाकर्म में वह इतनी उलझी रहती है कि उसे पता भी नहीं होता कि उसने किस-किस को अपना तन-मन दिया है। उसके फटे हुए भाग्य में उसे मिलने वाली पतंग हमेशा ही फटी ही मिलती है और मिलने के उपरांत भी वह नित फटती ही जाती है। उसके जीवन में उदित होने वाली हर रात तो नई होती है परंतु उस नई रात को मनाने हेतु उसे रोज नित-नया पति ढूँढना पड़ता है। उससे मुकाबला करने हेतु तन -मन में एक नई उमंग पैदा करनी पड़ती है। कितनी त्रासद् और भयावह परिस्थिति है यह। ऐसी त्रासद् और भयावह परिस्थितियों से पीड़ित इन माताओं का अपना कोई नहीं होता। उन्हें पवन के साथ दोस्ती करनी पड़ती है और उनका मन सदैव आकाश के भाँति विचरण करता रहता है। उसके जीवन में अवतरित होने वाली रातों का प्रत्येक चाँद उसका नया ब्याह रचाता और प्रात: सुबह उदित होने वाला प्रत्येक सूरज रात में रचाएँ गयें ब्याह का सिंदूर मिटाता है। ऐसी अनगिनत माताओं की इन सारी पीड़ाओं को कवि डॉ. शंकर चव्हाण ने 'सूरज मिटाता सिंदूर 'इस कविता में बडे ही सटीक शब्दों में अभिव्यक्ति दी है :-

हुआ अंधेरा-अंधेरा/समग्र कटपुतलियाँ हिलती/
जरा-सा एहसास लगने पर/कली पैरों तले आती॥1॥
कभी पराधीन न हुआ/देह स्वतंत्र-स्वतंत्र/
भूख इतनी भयावह की /तन प्रतिदिन समारोह॥2॥
रात होते -होते/कितना शिथिल जी होवे
न जाने देह किसे-किसे दिया/कैसे गिनाए -गिनाए॥3॥
डोर भाग्य में भाग्य में /कैसी फटती है पतंग
हर रात नई-नई/नया पति नई उमंग॥4॥
कैसे पवन से दोस्ती/मन अकाश-अकाश
चाँद रचाता ब्याह/सूरज मिटाता सिंदूर ॥5॥ 15

अंध और अतृप्त काम वासना से भरे हुए इस समाज व्यवस्था में पूँजीपति समाज व्दारा दीन-दलित-पीड़ित,अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार से ग्रस्त,दमन,शोषण,कुंठा और बलात्कार की शिकार हुई निम्न जनजाति कैसी त्रस्त है। पूँजीपति समाज व्यवस्था ने इन लोगों का भविष्य कैसे अंधकारमय बना दिया है इसका यथार्थ चित्र कवि ने 'आँखों में सूरज बंद होता' इस कविता में चित्रित किया है। कवि शंकर चव्हाण का मानना हैं कि

कीचड़ की देह के भरगच्च तलाब में प्रतिदिन ही वासना तैरते रहती है। ऐसा लगता है कि श्याम होते ही कीचड़ में उगनेवाले कमल के ड़ड़ी पर तैरते वासना का मेला-सा लगता है। और कवि डॉ. शंकर चव्हाण का यह मानना हैं कि इस मेले में स्त्री के अंग-प्रत्यांगों में स्थापितों एवं पूंजीपतियों का नकाब जैसे-जैसे डंक- सा बोता जाता है वैसे-वैसे उनका अंकुर निम्न,मध्यम वर्ग तथा जनजातियों में विकसित होता जाता है। कवि ने अपनी इन भावनाओं को निम्न शब्दों में अभिव्यक्ति दी है :-

स्त्रीत्व के अंगप्रत्यांग में
नक़ाब डंक बोता जाता
वेदना के रिक्त प्याले में
स्थापितों का अंकुर विकसित होता ॥2॥

कविता के अंत में कवि ने इन प्रसंगों में जीने वाली जन-जातिय माताओं के पीड़ा की अभिव्यक्ति निम्न शव्दों में की हैं :

रात में यहाँ प्रत्येक अवयवों का
चंदेरी उत्सव भरता रहता
कलेजे में झुलता अंधकार
आँखों में सूरज बंद होता ॥4॥

इस तरह से पीड़ित प्रतारित माँ को केवल पूंजीपति समाज व्यवस्था व्दारा ही नहीं तो अपने कहें जाने वालें घर-परिवार और समाज व्यवस्था के व्दारा भी किस प्रकार द.:ख पहुचायाँ जाता है ,इसका ह्दयद्रावक वर्णन कवि ने 'माँ मीरा के गले की पवित्र माला'इस कविता में किया है। कवि कहता हैं कि रात के बारह बजें भुट्टे को जैसे पीटा जाता है वैसे ही घर-परिवार में माँ को पीटा जाता है, सड़ीं हुई कुत्ती को जिस प्रकार नगर-निगम के गाड़ी में फ़ेक दिया जाता है उसी प्रकार माँ को भी झोपड़ी के अंधेरे कोने में फ.ेंक दिया जाता है। जिसे देखकर दिल बार-बार पसीज़ता। लेकिन अचरज़ की बात है यह कि इतना सब कुछ होने पर भी वह न समाज से विद्रोह करती और ना ही घर-परिवार से। वह हल्दी का पेड़ बन जीवनयापन करती रहती । इस अन्याय अत्याचार के बारे में जब उसे कोई पूँछता तो वह कहती 'कहीं पर भी जाए तो पलाश को तीन ही पत्तें दिखाई देंगे।' अर्थात कहीं पर भी जाने के बाद पलाश के तीन पत्तों में जैसा कोई भेद नहीं दिखाई देता वैसे ही स्त्री उच्चकुल की हो या निम्न कुल की या जनजाति की उसके इस स्थिति में बहुत ज्यादा अंतर नहीं पड़ता।जनजातिय समाज में माँ कि ओर तथा पिता की ओर देखने का दृष्टिकोण कैसा होता है उसे प्रकट करने के लिए संपूर्ण कविता को कवि ने 'गोशाला में बँधी हुई गाय को उसका बछड़ा और अधिक बिलखता' इस रूपक के माध्यम से निम्न पध्दति से अभिव्यक्त किया हैं :

'पिता'
लुहार के भट्टी की चिनगारीयाँ उड़ानेवाली आग

'माँ'

मीरा के गले की पवित्र माला
ऐसा ही मुझे दिखता
बया पंछी के घोसले में स्थित सारा गाँव उड़जाता
गोशाला में बँधी हुई गाय को
उसका बछड़ा और अधिक बिलखता।

कवि का मानना हैं कि जब-जब पूंजीपति समाज तथा घर परिवार में माताओं पर इस प्रकार के जुल्म ढ़ाए जाते हैं तब-तब गोशाला में बँधी हुई गाँय को उसका बछ.ड़ा और अधिक बिलखता है।

जनजातिय समाज में विचरण करने वाली माताओं को न केवल अपनी बल्कि अपने जवान बेटी की भी चिंता निरंतर सताती रहती है। निरंतर के दरिद्रता के कारण वह बेटी को चाहकर भी घर पर नहीं रख सकती। जैसे ही बेटी को कौवा स्पर्श कर जाता है, वैसे ही माँ के कलेजे में चिंता रूपी बमीठ.ा घर करने लगता है। सँात जन्मों की दरिद्रता के कारण संसार हमेशा सूखा-सूखा -सा ही रहता है। परंतु ऐसे विपरित परिस्थिति में जब बेटी मोलमज़दूरी हेतु किसी धनिक,साहूकार,संरजामदार या अन्य किसी भी व्यक्ति के खेत में जाती है तो उसके मन की आवस्था टंगें हुए छींके के समान हो जाती है। जवान बेटी जैसे ही नगर व्दार के बाहर जाती है वैसे ही उसके शिशे समान देह को लोग दंश मारना प्रारंभ कर देते हैं।वह चाहकर भी इन प्रस्थापितों का विरोध नहीं कर पाती परिणाम स्वरूप गन्ने के खेतों के दो मेड़ों के बीच वह जान गुँगी-गुँगी-सी,घूँट-घूँट कर रोती बिलखती है। 'ज्वाला श्मशान में भड़की' इस कविता में कवि ने माँ की पीड़ा के इसी दर्द को अभिव्यक्ति दी है ।

घुमंतु जन-जाति के अधिकांश माताओं को सरकारी सड़कों पर गिट्टी तोड़ते-तोड़ते ही अपना उदर्निवाह करना पडता है। गिट्टी तोडते समय बहुत बार उसकी उँगलियाँ हतौड़े के नीचे आ जाती है और लहू-लुहान-सी हो जाती है। परंतु बावजूद उसके पत्थर की खदान में ही उसे अपने सुनहरें सपनें बोने पड़ते हैं। यह सब वह किस लिए सहती है ? ऐसा यदि आप पूँछेंगे तो उसका उत्तर होता है अपने बेटे के भविष्य के लिए।उसके मन में यह आस रहती है कि टूटी-फुटी स्लेट लेकर ही क्यों न हो परंतु उसका बेटा पाठशाला में जाए। बेटे की पाठशाला उसे भविष्य की छाँव की तरह लगती है। बेटे के भविष्य के लिए वह आँखों में अँधेरा समाकर चूपचाप चलती रहती है और अपना जीवन स्वाह करते रहती है। बहूत बार छोटे बच्चें की देह ढ़कने हेतु उसे अपनी देह की पर्वा न कर उसे राम भरोसे छोड़ना पड़ता है। 'देह नग्न सी हुई' इस कविता में कवि डॉ. शंकर चव्हाण इन्होंने इसी भाव को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

धाँगड़ जनजाति में जन्में माताओं का पत्थ.र के साथ कितना घनिष्ट संबंध होता है। उनके जीवन को बनाने और बिघाड़ने ने में पत्थ.र ही किस प्रकार काम आता है इसका वर्णन कवि ने 'पत्थर ही काम आया' इस कविता के माध्यम से किया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने धाँगड़ जाति में जन्मी माता के मुख से उसके बेटे के

जन्म की कहानी कहलवाई है। माँ कहती है कि बेटे तू जब मेरी कोख में था तब अकाल ने चहू ओर तांड़व मचाया था। उस अकाल के परिणाम स्वरूप सरकारी सड़कों के निर्माण हेतु पत्थ.रों की गिट्टीयाँ तोडते -तोडते अधिकांश इनसान भी पत्थर-से ,पत्थर -समान ,पत्थ.र -दिल हो गए थें। पत्थरों की खदान में काम करते करते एक दिन आचानक तेरा पिता खदान फोड़ने हेतु लगाई गई सुरंग की बाती हुआ और सुरंग के साथ-साथ उसके देह की भी ठीकरीयाँ आसमान में चारों तरफ फैल गई। जैसे ही उसके देह की ठीकरीयाँ हुई वैसे ही मेरे माथें का सिंदूर मिट गया। उसके बाद तो पूरी ज़िन्दगी नरक समान ही बन गई। आर्थिक विपन्नावस्था में घिरे जीवन में बहुत बार फटे झोले में फुटी कवड़ी तक नहीं रहती। भूखा -प्यासा शरीर यत्र-तत्र-सर्वत्र भटकता रहता। भूखा-प्यासा ,थका मांदा देह जान विहीन-सा घूमता फिरता रहता। ऐसे में ही एक दिन आचानक बारिश आयी। खदान पर ही मुझे प्रसुति की वेदना होना आरंभ हुआ। लज्जा ढ़कने हेतु जरा-सा कपड़ा तक नसीब न हुआ। मानो ऐसा लग रहा था कि विश्वभर की इनसानियत मर -सी गयी हो । जैसे -तैसे मै प्रसुति की वेदना से मुक्त हो गयी। मुक्त होते ही तेरी आवाज मेरे कानों में पड़ी। तेरी नाल तोड़ने हेतु जब मुझे कुछ भी नहीं मिला तो अंत में पत्थ्र ही काम आया।

ग्राम्य जीवन जीने वाली माताओं को अपने और पराये दोनों की घृणा एवं वासना का कैसे शिकार होना पड़ता है उसका बहुत ही पीड़ादाई चित्रण कवि डॉ. शंकर चव्हाण जी ने 'ठेकेदार का भार' इस कविता में किया है। कवि कहता है कि वह हररोज की तरह ही आज जब घर वापस आई तो घर में चूल्हा,भगोना,बच्चें आदि और स्वयं वह भी भूखी थीं। घर आते ही कंबल पर थकी पड़ी-पड़ी वह मन ही मन में सोच रहीं थी कि क्यों सूरज डूबते समय ठेकेदार ने उसका हाथ पकड़ा था। कैसे उसने उसे झटका दिया और तुफानी वेग के साथ वह घर की ओर भाग आयी। लेकिन इज्जत बचाने चक्कर में उसकी दिन भर की मज़दूरी ठेकेदार के ही हाथ. में रह गई। घर आने के बाद देखा तो घर में चूल्हा,भगोना,बच्चें आदि और स्वयं वह भी भूखी थीं। ठेकेदार की वासना से भरी नज़रों से वह पहले ही परेशान थी। घर आने के उपरांत भी वह उसी घृणास्पद प्रसंग के बारे में सोच रही थीं कि आचानक उसके अपने कहे जाने वाले शराबी पति ने उसके कमर में लाथ. मारकर 'आज की मज़दूरी कहाँ गई?' यह सवाल पूछाँ। इस सवाल के पूँछने के बाद क्षणभर तो वह सहम-सी गई परंतु दूसरे ही क्षण आँखों में आँसू ढ़ालते हुए उसने ठेकेदार को गालियाँ देते हुए उसके माँ-बाप का उध्दार करना प्रारंभ कर दिया। उसे फटकार लगाई। यह सब पति को उसकी नौंटकी लगी। पति ने दहाड़ते हुए उससे कहाँ 'बस रंड.ी ! मालूम है ' बहुत पतिव्रता बन गई। कल यदि मज़दूरी लायी नहीं तो कल तेरी खैर नहीं " पति के यह व्यंग्य बाण सुनकर तो वह आहत-सी हो गई। ठेकेदार की वासना भरी नज़रों ने उसे जितनी पीड़ा दी थी उससे सौ-गुना ज्या.दा पीडा. पति के इस व्यंग्य बाणों ने उसे प्रदान की थी। दूसरे दिन संध्या समय उसने स्वयं ही जाकर ठेकेदार का हाथ. पकडा। और चार दिन की मज़दूरी अपने साड़ी के कड़ोसरी में खोसकर एक घण्टे के बाद मन ही मन में सोचती

रही कि पति की मार अच्छि है या ठेकेदार का भार अच्छा है ? इन दोनों में से अधिक पीड़ादायी क्या है ? कवि ने यह सब जितना सहज सीधे और सरल भाषा में कविता में अभिव्यक्त किया उतना ही गहरे रूप में वह पाठकों के दिलो दिमाग में उतरता जाता है। मुझ जैसा संवेदनशील कवि मन का व्यक्ति माँ के इस पीड़ा के लिए जितना जिम्मेदार ठेकेदार को मानता है उतना ही उस माता के शराबी को भी मानता है। और यह सोचता है कि कितनी दयनीय होती है ऐसी माताएँ जिन्हें दोनों ओर से मार पड़ती है। उनकी इस दयनीय पीड़ा का कहीं ठाँव ठिकाना भी रहता होगा या नहीं इसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

गड़रियाँ जाति में जन्मी माताओं का जीवन कैसे मेढ़क के संग बँधा होता है ,उसका वर्ण कवि ने 'डाइन का अभिषाप' इस कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया है। गड़रियाँ और मेंढ़क का जीवन अटूट होता है। मेढ़क के कारण गड़रियों को यत्र-तत्र-सर्वत्र घूमना पड़ता है । इस जाति में जन्मी अधिकांश माताओं को पर्वतों की तलहटी में कैसे छत को ही आसमान मानकर घूमना फिरना पड़ता है इस पर कवि ने विस्तृत प्रकाश डाला है। असंख्य यातनाओं और वेदनाओं का बवंड़र मन में पालकर बहुत बार उसे खुले मैदान पर ही प्रसुति की पीड़ा सहनी पड़ती है। न अस्पताल उसके तकदीर में होता है और न ही दाई। उसका पहला रोपन काँटों -काँटों में ही खत्म हो जाता है। आजीवन संघर्ष का मुकाबला करने वाली इन गड़रियाँ जाति की माताओं की पीड़ा का बड़ें ही सटीक शब्दों में कवि ने शब्दांकन किया है।

कवि डॉ.शंकर चव्हाण का मानना हैं कि जनजाति समाज में जन्मी माताओं की यह हालत आज की नहीं , बल्कि सदियों पुरानी है। 'माथेपर का शिलालेख' इस कविता में कवि लिखता हैं कि मेहनत के घने जंगलों में खोई राह को ढूुढने हेतु वह सपनों में ही चक्कर काट रही है। प्रतिवर्ष बरगद की टहनी पर कलम होने वाली सावित्री अपने हारे आंचल में वेदनाओं के पुष्प एकत्रित कर रही है। उसके होने न होने की गर्भ श्यामसंध्या को माथेपर स्थित सूरज टीस रहा है। उसके पलकों में बढ़ने वाला आमावस का पहाड़ आज भी चकमों का बाज़ार भराता है। हर रोज हर घड़ी घर को थोड़ी से रोशनी प्रदान करने हेतु वह पाषाण युग से जल रही है। खुदाई करते समय मिलने वालें शिलालेख आज भी उसके उस पीड़ा की साक्ष प्रदान कर रहे है।

इतने कष्टों से भरे जीवन में भी माँ को अपने बेटे के संगोपन हेतु क्या -क्या संघर्ष करना पड़ता है उसका वर्णन कवि 'दूध की धारा' इस कविता में करता है। प्रस्तुत कविता में माँ अपने बेटे को समझाते हुए कहती है कि बेटे नव माह नव दिन तक तुझे मैंने अपनी कोख में पाल-पोसकर बड़ा किया है। इस कालावधि में मुझे असंख्य यातनाएँ सहनी पड़ी। फटी पुरानी घोती,साड़ी से मैने आपना पेट बाँधा। बाँसी, बचाखुचा सब तुझे देकर मैं स्वयं भूखी रही। कई बार तेरे वास्ते मैने हवा तुफान के साथ बैर लिया।तेरे पिता ने भी तेरे लिए सजा भोगी किंतु बावजूद उसके तुझे हमने पाठशाला में भेजा केवल इस आस और उम्मीद के साथ की पढ़-लिखकर तू 'बाबासाहब' बनजाए। तेरे कपड़े-लत्ते हेतु हमने हमारे इज्ज़त का समग्र संचित उड़ेल दिया।तेरी इच्छा -अकांक्षा

के पूर्ति हेतु भीख माँगते-माँगते हमारी झोली तक फट गई। हमारे इतने कष्ट और संघर्ष के उपरांत तू पढ़-लिखकर बड़ा भी बन गया। परंतु बड़ा बनने के बाद एक उच्चवर्गिय जाति के लड़की के चक्कर में तूने यह क्या किया ? तू अपने जन्मदाता माता-पिता को ही भूल गया। बंबई जाने के बाद एक मॉडम के साथ तेरा पाला क्या पड़ा तू एक बार भी हमें मिलने के लिए नहीं आया। बड़ी जाती के मोह में तू अपनी माता के दूध को कैसे भूल गया? ऐसा करूणा से लिप्त सवाल प्रस्तुत कविता में माँ अपने बेटे से कर रही है। जिसे पढ़कर या सुनकर मन पसीज़-सा जाता है,आँखें आपने आप ही रोने -बिलखने लगती है। वास्तव में लालन-पालन के पश्चात बड़ा बनने के बाद बच्चों का उलटना-पलटना यह बात आज सार्वजनिक -सी हो गई है।

कभी -कभार इन माताओं की सहनशिलता का अंत-सा हो जाता है। तब उसे लगता है कि अब क्रांति ही पुकारे। ऐसे ही क्रांति से भरे भाव को कवि शंकर चव्हाण जी ने 'अब लगता है क्रांति ही पुकारे' इस कविता के माध्यम से निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है:

अब लगता है../आग बबूला होकर जाग उठे
इतना की सूरज को भी पसीना आए/और उसकी दो बुँदें
इनके इज्ज्त के बुरखें में स्थित /माँ -बहनों की गोद में
जोरदार बरसे /तब समझेंगा इन्हें
की कैसी रहती हैं /नग्न देह की /नग्न यातनाएँ।

'मदारीन' इस कविता में कवि ने घुमंतु जनजाति के एक ऐसे ही माता की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। मदारीन समाज में जन्मी माताओं का जीवन हमेशा ही डोर तथा ढोल ताशों के साथ बंधा होता है। डोर पर सँभलते समय उसकी क्या स्थिति होती है उसे कवि ने निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया हैं :

डोर पर सँभलते समय वह
चमडी को छिलती जाती
चीमगीदड़ों की चोंच को
अंग-अंग में बोते जाती ॥3॥

समाज व्यवस्था व्दारा ऐसी पीड़ित,प्रतारित माता के बेटीओं की व्यथाओं को भी कवि शंकर चव्हाण इन्होंने अपने काव्य संकलन की कुछ कविताओं में अभिव्यक्ति दी है। 'कसाई के व्दार पर गैंयां' यह कविता उसीकी परिचायक है। कविता में बेटी अपनी व्यथाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि माँ जब मोल मज़दूरी हेतु दूसरों के खेतों में जाती तब मुझे घर में ही रूखकर छोटे भाई के तरफ ध्यान देने की सलाह देती। माँ की सलाह सर आंखों पर रखते हुए तब मैं ही अपने छोटे भाई की माँ बन जाती। इस आपा-धापी में पाठशाला का बस्ता मेरे हाथों से आरंभ से ही कोसों दूर रहा और बस्ते की जगह खुरपी ने कब ली इस बात का पता तक नहीं चला। परंतु यह वास्तव था कि हाथ. में खुरपी आते ही मेरा जीवन फुटी स्लेट के समान ही हो गया। ऐसे में

ही मैं जवान हो गई तो घर में रिश्तें आना प्रारंभ हो गया। जवान बेटी के ब्याह की चिंता माँ-बाप को सताने लगी। जैसे-तैसे मेरा ब्याह संपन्न हो गया। डोली जब गाँव के नगरव्दार पर आयी तो माँ ने मुझे समझाते हुए कहाँ कि बेटी नारी का जीवन एक काँच के घड़ें के समान होता है। ससूराल जाकर अपने पिता के इज्ज़त का रक्षण करना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है। ससूराल जाते समय मेरी आँखों में आँसूओं की झड़ी -सी लग गई। माँ-बहन-भाई-पिता इनकी यादों को रोखना मेरे लिए असंभव-सा हो गया। ऐसे व्दंव्द -से भरे परिस्थिति में ही मैने ससूराल की चौकट लाँघी। लेकिन जैसे ही मैने ससूराल में पैर रखा शरीर में जहरीलें बिच्छू -सा स्पर्श हुआ। छिपते हुए सूरज को देखकर मैने मेरे मन को छिपाया। ब्याह के बाद की पहली रात में मेरा मन खरगोश-सा हुआ। पहली ही रात में वासना की आग में मेरा देह चूर-चूर हो गया। उसके बाद ससूराल में किस प्रकार भूखा-प्यासा रखा गया,उसपर कैसे-कैसे अत्याचार हुए उसका यथार्थ वर्णन कवि ने इस लंबी कविता में बखुबी से किया है। और अंत में देहात में जन्मी लगभग सारें स्त्रियों की ही आवस्था कैसे कसाई के व्दार पर बँधी गायों के समान होती है उसका निम्न शब्दों में वर्णन किया है :

ऐसे भोगती है भोग
सारे देहातों की नारीयाँ
गहरे खुटे को बांधीं हुई
जैसे कसाई के व्दारा पर गैंयां ॥23॥

बच्चों का पालन-पोषण करते समय माँ कैसे आटे संग आटा होती इसका वर्णन कवि डॉ. शंकर चव्हाण जी ने काव्य संकलन की कविता 'आटे संग आटा होती' में निम्न प्रकार से किया हैं :

माँ हमारी विद्यापीठ/रीडर की तरह बोलती
मृत्यु कथा कंठस्थ/साहब बन ऐसा कहती॥1॥
धुपकाले में हमारी चोंचे/माँ पेड़ बन जाती
हारे भरे पत्ते उसके/हमारे लिए निकालती॥2॥
शरीर सारा कृशकाया हुआ/अर्धचँद्र माथे पर लगाती
सुखी हुई टहनी पर/हया उसकी सुखाती ॥3॥
दाने न होते जाँते में /फिर माँ परोसती
भूख पीसते-पीसते /आटे संग आटा होती ॥4॥

ऐसे त्यागी,संघर्षमयी एवं समर्पित माता का जीवन उनके बच्चों के लिए कैसे उधवस्त खलियान सा हो जाता है इसका वर्णन कवि ने काव्य संकलन की 'उधवस्त जीवन' इस कविता में निम्न प्रकार से किया है :

पंछियों के चोंच हेतु
माँ सारी सुग्गि बने
उधवस्त जीवन उसका

हमारे लिये खलिहान बने॥3॥

ऐसे माताओं की तुलना कवि डॉ. शंकर चव्हाण 'संवाद विठ्ठल के साथ'इस कविता में पंढ़रपुर के विठ्ठल के साथ करते हुए लिखते है कि " हे पंढ़रपुर के विठ्ठल ! तू जिस प्रकार काला-साँवला है उसी प्रकार मेरी माँ भी काली-साँवली है। उसी को मैं साक्षात भगवान का रूप मानता हूँ। यदि साक्षात भगवान का प्रतीक मेरी माँ मेरे ही घर में स्थित है तो मैं तेरे दर्शनार्थ पंढ़रपुर क्यों आऊँ ? कविता में कवि अपनी माँ को कभी तुकाराम के अंभगों की मलाई मानता है,तो कभी जनाबाई के हद्य में स्थित ईश्वर का सुनहरा रूप मानता है; तो कभी कभी करूण रस के शिल्प का मंदीर ही मानता है। जिस प्रकार कई मैल पैदल पद-यात्रा कर हजारों -लाखों भक्तगण पंढ़रपुर जाकर विठ्ठल का दर्शन पाकर अपने आप को कृत-कृत मानते है उसी प्रकार की अनुभूति कवि माँ के आँचल में घुसते ही अनुभव करता है। इस भाव को कवि ने निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया हैं :

कितने चलते पैदल जुलूस
तेरे मिलन की रें आस है
आँचल तले घूसते माँ के
पंढरपुर का ही एहसास है॥5

कविता संग्रह की अंतिम कविता 'समानता' में कवि डॉ. शंकर चव्हाण ने प्रियकर -प्रियसी के बीच के संवाद के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्ति दी है। कविता में दोनों यह संकल्प करते है कि इस पूँजीपति समाज व्यवस्था में माताओं पर होने वाले अन्याय अत्याचार का मुकाबला दोनों को संयुक्त रूप से ही करना पड़ेगा। कविता के आरंभ में ही प्रियकर इस बात की कबूली देता है कि मै मानता हूँ मेरी लाख गलतियाँ हुई है। जानबुझकर तुझे बहुत-सी यातनाएँ दी गई। मुझ जैसे अनेक पुरूषों पर मनु के बोए विचारों का प्रभाव होने के कारण तेरी एक हाँक को तक हमने सुनने की कोशिश नहीं की। तू असंख्य बार मिन्नतें माँगती -फिरती परंतु तेरी किसी ने एक नहीं सूनी। विवशता वस कभी कभार तू आत्महत्या हेतु स्थान खोजती, इस मार्ग को अपनाने के बाद भी अपने पवित्रता हेतु असंख्य प्रमाण प्रस्तुत करती। लेकिन बावजूद उसके उस समय हमारा ध्यान तेरी तरफ कभी नहीं गया। लेकिन आज मेरे मन में साक्षात्कार हुआ है। मैं यह संकल्प लेता हूँ की तुझे आजीवन साथ दूँगा। इसलिए तु एक काम कर तेरा शिशे का एक हाथ मुझे दे और मेरे तलवार का एक हाथ तुझे ले। और चल हम दोनों मिलकर युगों-युगों से बंद पड़े हुए पाषाण युगी लोहे के दरवाजें खोलना आरंभ कर देते है। कवि प्रियकर के संकल्प को समानता इस कविता में निम्न शब्दों में अभिव्यक्त करता हैं :

तेरे शिशे का एक हाथ मुझे दे
मेरा तलवार का एक हाथ तुझे ले
और ... चल ...
बंद पड़े हुये पाषण युगी लोहे के दरवाजे
हम खोलना आरंभ करेंगे....

कविता में प्रियकर अपने सखी से आगे यह भी कहता हैं कि हे सखे तेरे कलेजे का शीतल सूरज तेरे आँखों में उदित होने दे। कविता में अपने सखी को समझाते हुए आगे प्रियकर कहता है कि :

अरें ! पत्थ्.ार से नहीं ठेंचने की कभी वेदना
पत्थ.र से निर्माण करनी होती है एक ही मूर्ति
धधगते मशाल की
या तो ऐसा भी करके देख
मुझ में स्थित अद्य पुरूषों ने
तेरे लिए आँखी हुई पुरूषोत्तम रेखा,
मेरे ही समक्ष पौंछ डाल।

कविता की उपर्युक्त पंक्तियों से कवि का आशय यही हैं कि स्त्री की दासता की यह करूण कहानी स्त्री पुरूष दोनों को मिल-जुलकर ही खत्म करने की आवश्यकता है। उसके लिए परस्पर सहयोग और सहकार्य की नितांत आवश्यकता है। कवि इन पंक्तियों के माध्यम से इस वास्तव को स्वीकारता है कि स्त्री पर होने वाले अन्याय-अत्याचार के लिए बहुत हद् तक पुरूषत्ताक समाज व्यवस्था व्दारा निर्मित रूढ़ी परंपराएँ ही कारणीभूत है। परंतु कवि यह बताना चाहता है कि हाथ की पाँचों उंगलियाँ जिस प्रकार समान नहीं होती उसी प्रकार सभी पुरूष भी समान नहीं होते। महिलाओं पर अन्याय अत्याचार करनेवाले अधिकांश पुरूष होते है परंतु उन्हें मद्त करने वालें पुरूषों की भी इस समाज व्यवस्था में कमी नहीं है। यही कारण है कि कवि सखी को अपने प्रियकर के माध्यम से यह सलाह दे रहा है कि पत्थ.रों से हमेशा वेदना को ही नहीं क्षमित किया जाना चाहिए बल्कि पत्थरों का उपयोग कभी कभार नई मूर्तियों का निर्माण करने हेतु किया जाना आवश्यक है। तभी इन परिस्थितियों में बदलाव आने की संभावना होती है। व्यवस्था में बदलाव लाने हेतु दोनों ओर से प्रयास होने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कवि अपने सखी से कह रहा है कि या तो ऐसा भी करके देख मुझ में स्थित अद्य पुरूषों ने तेरे लिए आँखी हुई पुरूषोत्तम रेखा, मेरे ही समक्ष पौंछ. डाल।

कविता में कवि आगे अपने सखी को समझाते हुए कह रहा है कि परिस्थिति को बदलने हेतु तुझे तेरे स्त्रीत्व के चेहरे के पीछे छीपे डर को निले अकाश में बोना आरंभ करना होगा। मैं स्वंभी इस काम में तुम्हे सहयोग प्रदान करूँगा । हे ! सखे यह काम उतना आसान भी नहीं है। इस कार्य हेतु तुझे अपने भावनाओं की इंटो की साहयता परंपराओं के बीना दिवारों का घर बाँधना पड़ेगा। तेरे मन के आँगण का अधटूटा पेड़ अब मुझ में लगाना होगा। इस प्रकार के बर्ताव से ही हम दोनों समानता के बराबर भागीदार बन सकते है ऐसा कवि डॉ. शंकर चव्हाण का मानना है। इसलिए कविता के अंतिम पक्तियों में कवि लिखता हैं :

चल.... हम....
बाँट लेंगे समान आसमान
हमारे दोनों के भी कंधों पर...
देख समानता , अपनी और ही आ रही है...

इस प्रकार संपूर्ण काव्य संकलन में कवि डॉ. शंकर चव्हाण ने ग्राम्य,आदिवासी और घुमंतु जीवन जीनेवाली माताओं के पीड़ा के विविध रूपों को अभिव्यक्त किया है। सारांश रूप में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि माँ की पीड़ा के विविध रूपों को जितनी सक्षमता के साथ मराठी में डॉ. शंकर चव्हाण ने अभिव्यक्त किया है उतनी ही सक्षमता के साथ मैने उसे हिन्दी अनूदित करते समय किया है। इस कारण यह काव्यानुवाद नकल न बनकर पुन:सृजन हो गया,शब्दानुवाद न होकरसही अर्थों में भावानुवाद हो गया है

संदर्भ सूची :

1. प्लेटो के काव्य सिध्दांत : निर्मला जैन पृष्ट क्रं 22
2. डॉ.भगीरथ मिश्र : पाश्चात्य काव्यशास्त्र इतिहास सिध्दांत और वाद ,पृष्ठ क्रं . – 164
3. तुलात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य : इन्द्रूनाथ चौधुरी पृष्ठ क्रं- 125
4. ललित कार्तिकेय : अनुवाद एक बेतरतीब वैचारिकी बहुवचन हिंदी त्रैमासिक जनवरी-मार्च 2001 अंक -06 ,पृष्ठ क्रं- 298
5. विवशता अनूदित काव्य संकलन डॉ. सुनील कुलकर्णी पुन: सृजन की अभिव्यक्ति पृष्ट क्रं 08
6. 'दमन' मराठी से हिंदी में अनूदित काव्य संकलन मूल लेखक डॉ.शकर चव्हाण अनुवादक डॉ. सुनील कुलकर्णी पृष्ट क्रं 05
7. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -3-4
8. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -7-8
9. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -10-11
10. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -13
11. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -14
12. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -17
13. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -22
14. वहीं वहीं पृष्ट क्रं -30
15. वहीं वहीं पृष्ट क्रं - 45